Film Review

'तिनको के नशेमन तक इस मोड़ से जाते हैं: आंधी' (1975)

सुधा उपाध्याय

Volume II

Perspectives - A Peer-Reviewed, Bilingual, Interdisciplinary E-Journal

Janki Devi Memorial College

University of Delhi

Find us at - http://perspectives-jdmc.in/

'तिनको के नशेमन तक इस मोड़ से जाते हैं: आंधी' (1975)

सुधा उपाध्याय

"मुझसे पूछा गया था कि आप महिलाओं को इतनी अच्छी तरह समझते हैं इसलिए आप फिल्में बनाते हैं। मैंने कहा कि मैं उन्हें नहीं समझता, मैं उन्हें बेहतर तरीक़े से समझना चाहता हूँ, इसलिए मैं महिलाओं पर फिल्म बनाता हूं"- गुलज़ार[1]

गुलज़ार अपनी सत्तर और अस्सी के दशक की फ़िल्मों में महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उलझनों को निहायत ही ख़ास अंदाज में पेश करने के लिए ज़्यादा जाने जाते हैं। इसका पहला उदाहरण मिलता है फ़िल्म आंधी। पुरुष समाज में एक स्त्री का अपने तरीक़े से जीवन जीने और अपने अधिकारों के लिए लड़कर अपनी जगह बनाने की पूरी जद्दोजहद ही है फ़िल्म आंधी। पिता और पति के समाज में अपनी आज़ादी ढूँढने की कोशिश है आंधी। यह एक ऐसी आंधी है जिसमें एक स्त्री पिता और पति को साथ लेकर चलना भी चाहती है और साथ में ख़ुद को आज़ाद भी रखना चाहती है। वो चाहती है कि पति का प्यार बना रहे पर साथ में यह भी कि उसको जो नई जगह मिल रही है, उसको भी स्वीकार करे। अगर पुरुष महत्वाकांक्षी

[1] Bashir, S. M. (2019). Gulzar 's Aandhi . Noida: HarperCollins Publishers India

है तो सही, लेकिन अगर स्त्री महत्वाकांक्षी हो गई तो ग़लत। यह सही और ग़लत के बीच में फँसी स्त्री की ही कहानी है आंधी।

सत्तर के दशक में समानांतर सिनेमा के अलावा जो फ़िल्में बन रही थीं उनमें आमतौर पर 'पुरुष अभिनय करते हैं, महिलाएँ दिखाई देती हैं। पुरुष महिलाओं को देखते हैं; महिलाएँ खुद को देखती हैं।' 1970 के दशक में मुख्यधारा के हिंदी सिनेमा ने महिलाओं की भूमिका को ग्लैमराइज करना शुरू कर दिया था, उनके लिए फिल्म में महिलाएँ सजावट की वस्तु थीं। उनकी भूमिका पुरुष अभिनेता के चरित्र और स्थान का महिमामंडन करती थी।[2] बहुत हद तक गुलज़ार ने इस मिथ को तोड़ने की कोशिश की। गुलज़ार ने ख़ुद कहा है—"उस समय फिल्मों में ऐसा होता था कि महिलाओं के लिए ज्यादा कुछ करने को रहता नहीं था। लेकिन मैं महिलाओं को उसी तरीके से दिखाना नहीं चाहता था जैसा समाज में सामान्य तौर पर चलता रहा है।"[3] आंधी इस मिथ को तोड़ते हुए एक नई जगह बनाने में कामयाब रही। आंधी ने भारतीय सिनेमा के दर्शकों को यह बताना चाहा कि महिलाओं की महत्वाकांक्षा को भी पूरी जगह मिलनी चाहिए। महिलाएँ सिर्फ़ 'सजावट की वस्तु' नहीं हैं। इसलिए गुलज़ार ने फ़िल्म के गीत में यह साफ़-साफ कहने की कोशिश की है कि महिलाओं की राहें थोड़ी सुस्त कदमों से आगे बढ़ रही हैं पर रफ़्तार बढ़ेगी और अपेक्षित स्थान मिलेगा।

---

[2] Berger, J. (1975). Ways of Seeing . London : British Broadcasting Corporation and Penguin .
[3] [3] Bashir, S. M. (2019). Gulzar 's Aandhi . Noida: HarperCollins Publishers India

इस मोड़ से जाते हैं

कुछ सुस्त क़दम रस्ते कुछ तेज़ क़दम राहे

इस मोड़ से जाते हैं

कुछ सुस्त क़दम रस्ते कुछ तेज़ क़दम राहे

पत्थर की हवेली को शीशे के घरौंदों में

तिनको के नशेमन तक इस मोड़ से जाते हैं

आ इस मोड़ से जाते हैं[4]

आप इसको ऐसे समझिए। असल में साल 1975 देश की राजनीति में ज़बरदस्त हलचल मची थी। लोकतंत्र के लिए काला अध्याय। लेकिन भारतीय सिनेमा के लिए यही साल कई मायने में अद्भुत रहा है। एक तरफ़ डाकुओं की बर्बरता पर बनी फ़िल्म ‘शोले’ ने अपनी ज़बरदस्त जगह बनाई और लोगों के मानस पटल पर अंकित हो गई तो दूसरी तरफ़ भाई-भाई के रिश्तों के बीच ‘दीवार’ बनकर खड़ी ड्यूटी, आदर्श और नैतिकता थी, तो तीसरी तरफ़ एक धार्मिक फ़िल्म जय संतोषी माँ ने आस्था में लोगों को ज़बरदस्त डुबकी लगाई। ये तीनों फ़िल्में न सिर्फ़ बिज़नेस के लिहाज़ से बल्कि हिन्दी सिनेमा जगत के लिए कालजयी फ़िल्में साबित हुईं। इन सबसे अलहदा थी 1975 में बनी फ़िल्म—‘आंधी’। आमतौर पर फिल्म आंधी अपने गीतों के लिए

[4] Film Andhi

सबसे ज़्यादा याद की जाती है पर इस फ़िल्म में जो तात्कालिकता थी, वो इसके मायने बहुत बड़े कर देती है। पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री की अहमियत को जगह दिलाने की कोशिश। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के बीच राजनीति या कहें राजनीति के बीच स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का तानाबाना। इस ताने-बाने के बीच जो स्थितियाँ बन और बिगड़ रही हैं वही इस फ़िल्म की सबसे अहम कड़ी है।

<u>इक राह अकेली सी रुकती है ना चलती है</u>

गुलज़ार की फ़िल्म आंधी के गीतों की एक-एक पंक्ति स्त्री की ज़िंदगी, उसकी चाहत, उसकी अहमियत, उसकी ख्वाहिशें, उसकी जरूरतें, आज़ाद होकर खुली हवा में साँस लेने का अहसास से रूबरू कराती हैं। वरना यह नहीं कहा गया होता कि इक राह अकेली सी रुकती है न चलती है…समाज का जो तानाबाना है उसमें स्त्रियाँ ज़रूरत तो हैं पर पुरुषों के हिसाब से। स्त्री की ज़रूरतें स्त्री के हिसाब से नहीं होनी चाहिए। वरना प्रोग्रेसिव कहे जाने वाले लोगों को भी स्त्रियों के इस हरकत से चोट पहुँचती है।

राजनीतिक समीकरणों और स्त्री के नेतृत्व महत्वाकांक्षाओं पर युगीन परिवेश और समाज के स्पंदन को पकड़ने वाली 'आंधी' फिल्म को मैं एक विचार मानती हूँ। फिल्म की कहानी केंद्रित है एक महत्वाकांक्षी स्त्री की राजनीतिक और वैचारिक, अनुशासन और संतुलन के समीकरण पर। हम सब जानते हैं की विवाह एक संस्था है जिसमें कई शर्तें होती हैं, पारम्परिक पुरुष या पितृ सत्तात्मक समाज कभी भी स्त्री को इतनी आज़ादी

नहीं दे पाता कि वे घर, परिवार, रिश्तों को निभाते हुए अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी को भी बड़ी ईमानदारी से पूरा करते हुए अपना चतुर्दिक विकास करे। हमेशा से स्त्री की वैचारिकता और नेतृत्व की क्षमता पारम्परिक पुरुष को अंधड़ की तरह लगती है। ऐसा बार बार कहा जाता रहा की "आंधी " फिल्म की कहानी कमलेश्वर की काली आंधी पर आधारित है। दरअसल जो मैंने ऊपर कहा कि 1975 में चार ज़रूरी फिल्में आयी, शोले, दीवार, जय संतोषी माँ और आंधी। इन चारों फिल्मों ने तत्कालीन समय और समाज में परिवेश को बदलने के लिए समाज के नज़रिये को बदलने के लिए अपने-अपने अनूठे तरीके से भूमिका निभाई। फिल्म आंधी में संजीव कुमार एक पारम्परिक पति और प्रगतिशील सोच रखने वाले क्रांतिकारी प्रेमी, दो अलग अलग हिस्सों में अपने चरित्र की भूमिका निभा रहे होते हैं। वो एक महत्वाकांक्षी स्त्री से प्रेम तो कर सकते हैं, पर एक राजनीतिक ज़िम्मेदारी निभाने वाली नेतृत्व करती हुई स्त्री की क़ाबिलियत और ताकत की आंधी में अपने को अडिग खड़ा नहीं रख पाते। नौ वर्षों की लम्बी जुदाई का वियोग दोनों को पीड़ा देता रहा। दोनों अपनी सामाजिक राजनीतिक ज़िम्मेदारी निभाते रहे पर असल में दोनों के बीच अमावस 15 रोज़ की न होकर 9 साल लम्बी रही।

आंधी फिल्म की नायिका आरती देवी एक सशक्त महिला की भूमिका में हैं जो पिता की सत्ता को नकारती हैं और प्रेम विवाह करती हैं। पति की सत्ता को नकारती हैं और उनकी ज़िद्द व हठ को छोड़कर राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए सुख सुविधा छोड़कर त्याग बलिदान की राह चुनती हैं, पर ऐसा क्यों होता है

कि पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देने वाली स्त्रियां अपनी इच्छाओं, कामनाओं का त्याग बलिदान करती हुई, सार्वजनिक जीवन जीते हुए बार-बार कभी पिता, कभी पति और कभी समाज के प्रति जवाबदेह होती हैं ।

एक प्रतिभाशाली स्त्री क़ाबिलियत होते हुए भी अनिर्णय की स्थिति में क्यों रहे। सर्वोच्च पद प्रतिष्ठा पाने वाली स्त्री, जिसने अपने 9 साल लोगों की सेवा सहयोग करने में लगा दिए, वह अपने निजी जीवन के बेहद निजी ज़रूरतों के लिए या अपने हक़ अधिकार के लिए अगर कोई कदम उठाये तो उसे इसी पुरुष समाज से अनुमति और मंत्रणा की ज़रूरत क्यों पड़ती हैं?

क्या स्त्री के लिए कोई निश्चित सम्मानित ठौर नहीं बचता कि इस मुकाम पर पहुँच कर भी वह कभी पिता की उत्तराधिकारी तो कभी पति के प्रेम परवाह और कभी जनता की उम्मीदों पर खरा उतरने वाली हथियार बनकर या यूँ कहे की किसी देश की राजनीतिक पार्टी की कठपुतली बनकर क्यों जीती रहे?

आप समझ सकते हैं जब किसी देश के सर्वोच्च पद प्रतिष्ठा पर रहने वाली स्त्री को प्रश्नों के घेराव में रखा जाता है तो उस देश और समझ की औसत स्त्रियों की स्थिति क्या होगी? जबकि स्त्रियां जहाँ कहीं भी हैं, बड़ी कुशलता से नेतृत्व कर रही हैं, हर जगह अपना बेस्ट ही दे रही होती हैं। चाहे वह रिश्ता हो, घर परिवार हो, या राजनीतिक अखाड़ा हो। चुनाव लड़ना या न लड़ना उनकी इच्छा में शामिल न भी हो पर लोकप्रियता के कारण, राजनीतिक दल ऐसी स्त्रियों पर चुनाव लड़ने का दबाव बनाते हैं। आंधी फिल्म की यह नायिका

आरती देवी, सशक्त महिलाओं की मिसाल बनकर बार बार चुनौतियों का सामना करते हुए फाइटर की तरह लड़ती है। मेरा कहना यही है की हर परीक्षा में खरा उतरना, समाज के बड़े बड़े सवालों का जवाबदेह बनना एक स्त्री के बूते की ही बात है।

एक दूर से आती है पास आ के पलटती है, एक राह अकेली सी रुकती है न चलती है, ये सोच के बैठी हूँ इक राह तो वो होगी, तुम तक जो पहुँचती है। सिनेमा में क्लाइमेक्स में आल इंडिया रेडियो खबर देता है कि आरती देवी देश की प्रधानमंत्री बन गयी हैं और वो अपनी राजनीतिक ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के लिए दिल्ली के लिए रवाना हो रही हैं। यानी इच्छा बलवती होने पर भी पति के साथ बसने- रुकने की कामना करती हुई आरती देवी एक बार फिर पुरुष के वर्चस्व से समझौता करने को मजबूर हो जाती हैं। पति का वर्चस्व कहता है— "तुम पहले भी अपने निर्णय से घर छोड़कर गयी। घर वापसी का निर्णय भी तुम्हारा अपना होना चाहिए। तुम एक आधुनिक स्वतंत्र स्त्री हो और अपने निर्णय लेने के लिए आज़ाद हो।" एक आज़ादी पिता देता है। एक आज़ादी पति देता यही और एक अलग तरह की ही आज़ादी जनता देती है। इस त्रिकोण में सब उसे आज़ाद ख्याल मानते रहे और आरती देवी एक सरल सीधा जीवन जीने के लिए तरसती तड़पती रही।

<u>आंधी की तरह उड़ कर इक राह गुज़रती है</u>

आंधी फिल्म की एक दिलचस्प बात जो मेरा ध्यान खींचती है, अपने आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के साथ तमाम चुनौतियों का सामना करती हुई स्त्री अकेली पड़ जाती है। पर उसको अंदाज़ा है कि अकेले होकर भी वो बहुत कुछ कर सकती है। पुराने सारे मापदंड तोड़ सकती है। इस पूरी फिल्म में एक ही महिला पात्र है, पिता तो हैं माँ की चर्चा भी नहीं। पार्टी में कोई अन्य सहयोगी महिला भी नहीं। यहाँ तक की बेटी मनु भी नेपथ्य में ही रह जाती है।

प्रतीकात्मक रूप से यही दिखाया गया है कि पुरूषों के बीच एक अकेली स्त्री बिना किसी सहयोग समर्थन के पुरुषों की उम्मीदों पर और उनकी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए, बार-बार जवाबदेही के तराज़ू पर तुलती है। फिर भी उसे बार-बार सुनना पड़ता है कि यह उसकी उच्चाकाँक्षाएं हैं, जो उसे नॉर्मल ज़िंदगी जीने नहीं देती। आरती देवी के छवि और चरित्र के उसकी अपनी पार्टी के पुरुषों को भी, जो भ्रष्ट और तिकड़मी हैं, चुनाव जीतने के अवसरवादी तरीक़े अपनाते हैं उन्हें नागवार ठहरता है। उस हिंसक भीड़ से उठने वाला पत्थर आरती देवी को चोट पहुँचाता है पर कैंपेन मैनेजर लल्लू लाल जी पहले प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाते हैं पत्रकारों के सामने पूरी भड़ास निकालते हैं और आरती देवी की राजनीति से नीति और रणनीति ग़ायब उन्हें हार जीत की कठपुतली के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उसका क्रांतिकारी पति भी भले ही उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उससे विवाह करता है पर वह भी इसी पारंपरिक वर्चस्व को ढोती हुई, पुरूष सत्ता का प्रतीक है जो यह कहे बिना नहीं रूक सकता कि तुम पत्नी हो पत्नी बनकर ही रहो, पति बनने की कोशिश न करो। आज भी कमोबेश यही

स्थितियाँ बनी हुई हैं। 1975 से 2022 तक औरतों की दुनिया में कोई भारी फेरबदल नहीं हो पाया है। आज भी महानगरों में पलती-बढ़ती घर के सुरक्षित माहौल में बच्चियों को शिक्षा, रोज़गार, निर्णय लेने का अधिकार, विचारों की स्वतंत्रता भले ही दी जा रही हो, इन सबके बावजूद समाज की रुग्ण मानसिकता ऐसी उच्चाकांक्षी बच्चियों को, जो अपनी निजता और अस्मिता को आदर देना जानती है ऊँची कुर्सी पर देखते ही तिकड़म भिड़ाने लगते हैं।

भारतीय सिनेमा में आंधी पहली ऐसी फ़िल्म है जिसका मुख्य किरदार एक आधुनिक भारतीय महिला राजनीतिज्ञ है। यह वह समय था जब इंदिरा गांधी जैसी महिला देश के शीर्ष पर थी। उनका व्यक्तित्व एक 'गुंगी गुड़िया' (गूंगा गुड़िया) से एक तानाशाह में बदल गया था जो अजेय और डराने वाला था। और एक बार के लिए, जब उसे चुनौती दी गई, उसने आपातकाल की घोषणा की और भारत में आंधी ला दी।

आंधी फ़िल्म पर इमरजेंसी का भी असर था। जनता का भीतर ग़ज़ब का असंतोष और विद्रोह, जो राजनीतिक गलियारे से धीरे-धीरे सामाजिक अखाड़ों में मुखर हो रहा था। सलाम कीजिए आली जनाब आए हैं, यह गाना पूरी तरह से अपनी प्रतीकात्मकता में नेतृत्व के पाँच सालो का हिसाब माँगता है। और इस गाने के अंत में भीड़ का हिंसक हो जाना, आरती देवी पर पथराव होना इसी बात का प्रतीक है कि नेतृत्व करती हुई स्त्रियाँ उनकी प्रतिस्पर्धा में हमेशा चंद्रसेन ओमशिव पुरी जैसा समृद्ध धनकुबेर पावर पद प्रतिष्ठा और रसूखदार ही नहीं होता, बल्कि जनता जनार्दन भी अंधी भीड़ की तरह पैसे के बलबूते पर अपनी वैचारिकता को खोकर

अवसरवादी अराजक भ्रष्ट ताक़तों का मोहरा बनती है। चूँकि आरती देवी विदेश से शिक्षा ग्रहण कर लौटी हैं तो ज़ाहिर है भारतीय जनता और उसके मूल समस्याओं से बहुत अधिक परिचित नहीं। पर उनके पार्टी कमांडर लल्लू लाल जी यानी की ओमप्रकाश अवसरवादी राजनीति का खिलाड़ी है। वह अपनी स्त्री नेता को गरिमा और आदर देना नहीं जानता। क्योंकि ऐसे समाज में एक स्त्री या तो कुशल राजनीतिक नेता हो सकती है या फिर एक सुघड़ पत्नी। अगर वह दोनों भूमिकाओं में रहना-बसना जीना चाहती है तो उसे शर्मिंदगी का शिकार होना पड़ता है। जबकि आरती देवी जनता का दिल जीतना चाहती है। अंधी भीड़ को ठेल को जनहित में जन चेतना का आदर देना चाहती है। इसलिए चुनाव प्रचार में लगाए गए पोस्टर पर प्रश्न चिन्ह लगाती है कि ये सब पोस्टर हिन्दी में क्यों नहीं है। क्योंकि पोस्टर तो जनादेश तैयार करने के लिए बनाए जाते हैं और जनता की भाषा तो हिन्दी है। लल्लू लाल जी का शिकंजा आरती देवी पर बहुत मज़बूत है। चुनावी रैलियों और प्रचार के दौरान वह आरती देवी को हमेशा अंधेरे में रखता है। कई बार गुमराह करता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि आरती देवी जैसी स्त्रियाँ हमेशा दूसरों के निर्णय का शिकार बनती हैं। और जब कभी धीमे से ही सही अपने हित में निर्णय लेना चाहती हैं तो इस पारंपरिक समाज में आंधी सी आ जाती है। पिता ने अपने व्यवसाय के हित के लिए, पति ने दांपत्य सुख के लिए, यहाँ तक कि परिवार का सेवक वृंदा भी आरती देवी को ललकारता है कि वो पति की अनुगामिनी बनकर अपने घर गृहस्थी को सँभाले। लल्लू लाल ख़ुद, जिसे आरती देवी का सलाहकार बनना चाहिए, आरती देवी के प्रतिद्धंद्धी नेता के ख़िलाफ़ दंगे भड़काता है। यानी इन सबका संयुक्त जमात है जो अपने मंतव्य और उद्देश्य पूर्ति के लिए उसकी लोकप्रियता भुनाते हैं।

ऐसी स्त्रियाँ ताउम्र फ्लैशबैक में गाती रहती हैं—इक राह तो वो होगी, तुम तक जो पहुँचती है। क्योंकि प्रेम व मन की गहराइयों को छूते कुछ सुस्त कदम रस्ते खो चुके हैं और प्रतिस्पर्धा व राजनीतिक अभिलाषाओं की कुछ तेज़ कदम राहें बहुत आगे निकल चुकी हैं।

चुनाव में आरती देवी का सिंबल है उड़ती हुई चिड़िया। आप समझ सकते हैं इस सिंबल का मतलब। उड़ती हुई चिड़ियाँ हमारे देश की महिलाओं की अभिलाषा है। वो खुली हवा में आज़ाद होकर, शारीरिक मानसिक बेड़ियों को तोड़कर उड़ना चाहती हैं। कम से कम आरती देवी तो ऐसा करने की पूरी कोशिश करती हैं। निजी ज़िंदगी से लेकर राजनीतिक जीवन में उन्होंने इसको लागू करने की पूरी कोशिश की। इस लिहाज़ से फ़िल्म का आख़िरी सीन बहुत अहम है। चुनाव जीतने के बाद आरती देवी हेलीकॉप्टर लेती हैं और उस हेलीकॉप्टर को हवा में उड़ते हुए दिखाया गया है। यह प्रतीक है नई आज़ादी का, जहाँ पति, अपनी पत्नी के फ़ैसले का सम्मान करता है।[5]

[5] Singh, H. (2013, August 7). Films and Phillosophy of Gulzar: A Critical Study. Retrieved June 25, 2017

संदर्भ

(१) Bashir, S. M. (2019). Gulzar ’s Aandhi . Noida: HarperCollins Publishers India

(२) Berger, J. (1975). Ways of Seeing . London : British Broadcasting Corporation and Penguin .

(३) Bashir, S. M. (2019). Gulzar ’s Aandhi . Noida: HarperCollins Publishers India

(४) Film Andhi

(५) Singh, H. (2013, August 7). Films and Phillosophy of Gulzar: A Critical Study. Retrieved June 25, 2017

लेखक का परिचय

दिल्ली विश्वविद्यालय के जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज में असोसिएट प्रोफेसर के तौर पर कार्यरत डॉ सुधा उपाध्याय हिंदी की आज की लेखिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। रचना में निहित संदर्भों को समेटते हुए उसकी व्यापकता में देखना सुधा उपाध्याय की सबसे बड़ी खासियत है। इसलिए अविधा उनकी सबसे बड़ी ताक़त है। रचना में मुखरता और प्रतिबद्धता कि वजह से वो साहित्य और आलोचना जगत में बिलकुल अलग दिखती हैं। रचनाधर्मिता उनकी जीवन प्रक्रिया का अहम हिस्सा है। कविता और कहानी में जिस तरह वो समाज, इतिहास और राजनीति के सूक्ष्म बिंदुओं को पकड़ती हैं, आलोचना में कृति के समाजशास्त्र, सौंदर्य बोध और उसके तलीय स्वर को पकड़ने का साहस करती हैं। ईमानदारी उनकी रचनाओं में तो दिखती ही है जीवन में भी भरपूर नज़र आती है। पेशे से अध्यापक, दिल से शोधकर्ता और दिमाग से समीक्षक, कुल मिलाकर साहित्य को समग्रता में जीती हैं। एक शिक्षक होने के नाते समाज के हर उस शख्स के लिए वो आवाज़ उठाती हैं जो शिक्षा से वंचित रह जा रहा है। कविता, कहानी, लेख और आलोचना में इसकी झलक साफ नज़र भी आती है। बेबाक टिप्पणियों के लिए सुधा उपाध्याय जानी जाती हैं। शायद यही वजह है कि वो किसी अनर्गल विमर्श में न पड़कर एक स्वस्थ संवाद कायम करने में विश्वास रखती हैं।